National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(63): 142-145
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. प्रभात शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, श्यामलाल कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय - 110005

Correspondence:
डॉ. प्रभात शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, श्यामलाल कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय - 110005

स्मृति से सृजन तक: ममता कालिया के संस्मरणों में रचना-प्रक्रिया का आत्मकथ्य

डॉ. प्रभात शर्मा

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में संस्मरण-विधा को प्रायः आत्मीय स्मृति, निजी अनुभव और जीवन-वृत्त की संवेदनीय अभिव्यक्ति के रूप में समझा जाता रहा है। किंतु समकालीन लेखन में संस्मरण केवल अतीत की पुनरावृत्ति भर नहीं रह गया है; वह रचना-प्रक्रिया के आत्मकथ्य का एक सशक्त माध्यम बन गया है। इस संदर्भ में ममता कालिया का संस्मरण साहित्य विशेष महत्त्व रखता है। उनके यहाँ स्मृति भावुक आत्मकथन नहीं, बल्कि सृजन की आधारभूमि, लेखकीय चेतना का निर्माण-स्थल और साहित्यिक विवेक का विस्तार है।

साहित्य-सृजन ममता कालिया के लिए किसी एक क्षण की प्रेरणा का परिणाम नहीं है। वह जिए हुए जीवन, अवचेतन में संचित अनुभवों और समय के साथ बदलती दृष्टि की संयुक्त प्रक्रिया है। संस्मरण उनके यहाँ जीवन की डायरी नहीं, बल्कि लेखन की प्रयोगशाला बन जाते हैं। इसीलिए उनके संस्मरणों को पढ़ते हुए पाठक रचना के 'नेपथ्य' में प्रवेश करता है- वह स्थल जहाँ लेखक का व्यक्तित्व, उसकी भाषा और उसकी रचनात्मक दृष्टि आकार ग्रहण करती है। इस संदर्भ में नामवर सिंह का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है- "संस्मरण में लेखक अपने जीवन को नहीं, अपने समय को याद करता है; और वही उसे साहित्य बनाता है।"[1] ममता कालिया के संस्मरण इस कथन को सार्थक करते हैं। उनके यहाँ स्मृति निजी होते हुए भी सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना में रूपांतरित हो जाती है। वे अपने जीवन के बहाने अपने समय, अपने समाज और अपने साहित्यिक परिवेश को दर्ज करती चलती हैं।

ममता कालिया की संस्मरणात्मक कृतियाँ- **'पढ़ते, लिखते, रचते', 'कितने शहरों में कितनी बार'** और **'जीते जी इलाहाबाद'** को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए लेखन किसी एक विधा तक सीमित क्रिया नहीं है। यह जीवन, समाज, भाषा और समय के साथ चलने वाला निरंतर संवाद है। इन कृतियों में स्मृति व्यक्तिगत अनुभव से आगे बढ़कर रचनात्मक संरचना, आलोचनात्मक विवेक और सांस्कृतिक आत्मबोध का रूप ग्रहण करती है।

स्मृति की अवधारणा और रचनात्मक रूपांतरण

ममता कालिया के संस्मरणों में स्मृति का स्वरूप स्थिर या नॉस्टैल्जिक नहीं है। वह चयनित, पुनर्गठित और आलोचनात्मक है। उनके लिए स्मृति कोई तैयार साहित्य नहीं, बल्कि वह कच्चा पदार्थ है जिसे रचनात्मक अनुशासन से गुजरना पड़ता है। 'पढ़ते, लिखते, रचते' में वे स्पष्ट करती हैं कि स्मृतियाँ स्वयं लेखन नहीं बन जातीं- उन्हें भीतर पकना पड़ता है।

वे लिखती हैं- "बचपन में देखे दृश्य-बिंब कितने लंबे समय तक साथ चलते हैं, यह आज समझ में आता है; वे हमारे मानस की स्थायी संरचना बन जाते हैं।"[2]

यह कथन स्मृति को भावनात्मक अवशेष नहीं, बल्कि मानसिक संरचना के रूप में परिभाषित करता है। बचपन के दृश्य, आवाज़ें, संबंध और परिवेश अवचेतन में संचित रहते हैं और समय आने पर रचना का रूप लेते हैं।

ममता कालिया के संस्मरणों में पिता की स्मृति रचना-प्रक्रिया की आधारशिला बनती है। पिता केवल भावनात्मक सहारा नहीं, बल्कि भाषा और संवेदना के प्रथम शिक्षक हैं। वे स्वीकार करती हैं- "कई वर्षों तक पापा मेरे शब्दकोश, अर्थकोष और भावकोष बने रहे।"[3] यह स्वीकारोक्ति दर्शाती है कि लेखिका की भाषा सामाजिक और पारिवारिक संस्कारों से निर्मित होती है। पिता यहाँ स्मृति के रूप में नहीं, बल्कि रचना-प्रक्रिया के मूल स्रोत के रूप में उपस्थित हैं। बचपन में अर्जित भाषा-संस्कार ही कालांतर में उनके कथा-साहित्य और संस्मरणों में रचनात्मक संरचना बनकर उभरते हैं। ममता कालिया परिवार, विद्यालय, मित्रों, सामाजिक उत्सवों और साधारण जीवन-घटनाओं को केवल विवरणात्मक रूप में नहीं प्रस्तुत करतीं। वे इन अनुभवों के भीतर छिपे तनाव, संघर्ष और सामाजिक अर्थ को उभारती हैं। इसीलिए उनके संस्मरण निजी न रहकर सामाजिक दस्तावेज बन जाते हैं। स्मृति यहाँ आत्मकथा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पाठ में बदल जाती है।

रचना-प्रक्रिया : अवचेतन मन का का संजाल

ममता कालिया अपनी रचना-प्रक्रिया को किसी योजनाबद्ध या रैखिक गतिविधि के रूप में नहीं देखतीं। उनके अनुसार लेखन अवचेतन की गहराइयों में चलने वाली एक जटिल, संश्लिष्ट, बहुआयामी और बहुस्तरीय प्रक्रिया है। 'पढ़ते, लिखते, रचते' में उनका बहुचर्चित कथन- "अगर कोई ऐसा कंप्यूटर बन जाए जो दिमाग की पूरी प्रक्रिया को मॉनिटर पर उतार दे, तो मेरी रचना-प्रक्रिया का ऐसा पेचीदा जाल सामने आए कि मैं खुद उसका विश्लेषण न कर पाऊँ।"[4] यह वक्तव्य लेखन को रहस्यात्मक नहीं, बल्कि मन के भीतर चलने वाली निरंतर सक्रिय मानसिक ऊर्जा के रूप में प्रस्तुत करता है। एक ही समय में उनके भीतर कई कहानियाँ, कविताएँ और विचार समानांतर चलते रहते हैं। यही बहुलता उनकी रचनाधर्मिता की मूल शक्ति है। निर्मल वर्मा का यह कथन इस संदर्भ में विशेष अर्थ ग्रहण करता है- "स्मृति लेखक के लिए अतीत नहीं, एक जीवित वर्तमान होती है, जो हर बार लिखते समय नए अर्थ ग्रहण करती है।"[5] ममता कालिया की रचना-प्रक्रिया इसी 'जीवित वर्तमान' से संचालित होती है। स्मृति उनके लिए ठहरा हुआ अतीत नहीं, बल्कि निरंतर रूपांतरित होती चेतना है।

ममता कालिया रचना-प्रक्रिया के भौतिक माध्यमों- काग़ज़, कलम, लिखावट को भी अत्यंत महत्त्व देती हैं। वे स्वीकार करती हैं- "मेरे सामने रूलदार कागज़ आ जाए तो मैं लिखने का इरादा ही छोड़ देती हूँ।"[6] यह कथन लेखन को एक संवेदी और शारीरिक अनुभव के रूप में स्थापित करता है। यहाँ सृजन केवल विचारों की प्रक्रिया नहीं, बल्कि देह, स्पर्श और माध्यम से जुड़ा हुआ कर्म है।

लेखन और अनुभव की प्रामाणिकता

ममता कालिया के संस्मरण और उनके कथा-साहित्य के बीच गहरा संबंध है। वे अपने कथा-लेखन के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहती हैं- "मैं अपनी हर कहानी पर यह शपथ पत्र लगा सकती हूँ कि मैंने उसे अपनी नसों पर महसूस करते हुए लिखा।"[7] यह कथन रचना-प्रक्रिया को नैतिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है। अनुभव की प्रामाणिकता उनके लेखन की केंद्रीय शक्ति है। उनकी कहानियाँ- जैसे 'बेघर' या '*एक पत्नी के नोट्स*'—हवा में नहीं रची गईं, बल्कि स्मृति, अनुभव और सामाजिक दबावों से उपजी हैं।

अशोक वाजपेयी ने ममता कालिया के गद्य के संदर्भ में टिप्पणी की है- "ममता कालिया का गद्य आत्मीय भी है और आलोचनात्मक भी; वह अनुभव को बिना महिमामंडन के, उसकी पूरी जटिलता में रखता है।"[8] यह टिप्पणी उनके संस्मरणों और कथा-साहित्य दोनों की भाषा-शैली और आत्मालोचनात्मक स्वर को स्पष्ट करती है।

शहर और स्मृति : स्थान, विस्थापन और रचनात्मक चेतना

ममता कालिया के संस्मरणों में 'शहर' केवल भौगोलिक इकाई नहीं है, बल्कि स्मृति का सक्रिय वाहक है। उनके यहाँ शहर जीवनानुभव का ऐसा क्षेत्र बन जाता है, जहाँ भाषा, संवेदना और सामाजिक यथार्थ परस्पर टकराते हैं। 'कितने शहरों में कितनी बार' इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें स्मृति और स्थान के बीच का संबंध रचना-प्रक्रिया का निर्णायक घटक बन जाता है।
वे लिखती हैं- "हर शहर मुझे कुछ देता है और कुछ छीन भी लेता है; शायद इसी लेन-देन में स्मृतियाँ जन्म लेती हैं।"[9] यह कथन स्पष्ट करता है कि स्मृति स्थायित्व से नहीं, बल्कि निरंतर विस्थापन से निर्मित होती है। दिल्ली, बंबई, पटना, इलाहाबाद हर शहर ममता कालिया के जीवन और लेखन का एक अलग चरण है। इन शहरों के साथ उनका संबंध न तो पूर्ण अपनापन है और न ही पूर्ण दूरी; यह एक प्रकार का संवेदनात्मक संवाद है।

ममता कालिया यह स्वीकार करती हैं कि सरकारी नौकरी करने वाले पिता के कारण वे किसी एक जगह की नहीं हो सकीं। यह 'जड़हीनता' उनके लेखन में अभाव नहीं, बल्कि विश्लेषणात्मक दृष्टि में बदल जाती है। वे शहरों को घर की तरह नहीं, अनुभव की तरह

देखती हैं। इसीलिए उनके संस्मरण पर्यटन-विवरण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आलोचना का रूप लेते हैं।

'जीते जी इलाहाबाद' में यह प्रक्रिया अपने चरम पर पहुँचती है। यहाँ इलाहाबाद केवल व्यक्तिगत स्मृति का नगर नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में उपस्थित होता है। वे लिखती हैं- "इलाहाबाद मेरे लिए सिर्फ एक शहर नहीं, बल्कि वह पाठशाला है जहाँ मैंने जीवन और साहित्य दोनों सीखे।"[10] यहाँ स्मृति निजी न रहकर सांस्कृतिक आत्मकथ्य बन जाती है। साहित्यिक बहसें, लेखक-संघर्ष, पत्रिकाएँ और गोष्ठियाँ—सब मिलकर उनकी रचना-चेतना को आकार देते हैं।

स्त्री-अनुभव और रचना-प्रक्रिया : स्मृति, निषेध और विद्रोह

ममता कालिया का संस्मरण लेखन स्त्री-अनुभव से गहराई से जुड़ा हुआ है, परंतु यह जुड़ाव न तो नारेबाज़ी में बदलता है और न ही आत्मदया में। उनके लिए स्त्री होना लेखन का विषय नहीं, बल्कि उसकी आधारभूमि है। वे कहती हैं- "स्त्री होना मेरे लेखन का विषय नहीं, उसकी भूमि है।"[11] यह कथन स्त्री-अनुभव को रचना-प्रक्रिया की मूल शर्त के रूप में स्थापित करता है।

'पढ़ते, लिखते, रचते' में संकलित संस्मरण 'जब मैं सोलह साल की थी' इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह संस्मरण दिखाता है कि सामाजिक निषेध किस प्रकार रचनात्मक विद्रोह को जन्म देता है। जहाँ अन्य लड़कियों को 'संयम' और 'संकोच' सिखाया जाता है, वहीं लेखिका का मन साइकिल उठाकर आंधी– पानी में निकल जाने को करता है। मन्नू भंडारी का यह कथन यहाँ विशेष अर्थ ग्रहण करता है- "स्त्री जब अपने अनुभव लिखती है, तो वह केवल आत्मकथा नहीं लिखती, वह पूरे सामाजिक ढाँचे का बयान करती है।"[12] ममता कालिया के संस्मरण- विशेषतः 'जब मैं सोलह साल की थी'—इस कथन को मूर्त रूप देते हैं। यही विद्रोही चेतना उनकी कहानियों- 'बेघर', 'एक पत्नी के नोट्स'- की स्त्री-पात्रों में दिखाई देती है।

ममता कालिया स्वीकार करती हैं कि एक स्त्री के लिए लेखकीय 'स्पेस' बनाना आसान नहीं। 'पढ़ते, लिखते, रचते' में वे बताती हैं कि उनके घर में उनका लेखक होना लंबे समय तक "हास्य– विनोद का विषय" रहा। यह अनुभव हिन्दी की स्त्री-लेखन परंपरा- मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती से उन्हें जोड़ता है, जहाँ लेखन के लिए एकांत मिला नहीं, बल्कि छीना गया।

साहित्यिक तकनीक और भाषा-शैली : संस्मरण की अभिव्यक्ति

ममता कालिया का संस्मरण साहित्य वैचारिक ही नहीं, शिल्पगत दृष्टि से भी अत्यंत सुदृढ़ है। उनकी भाषा न तो अलंकृत है और न ही सपाट। उसमें कथात्मक सादगी, आत्मीयता और आलोचनात्मक तीखापन- तीनों का संतुलन है।

उनकी संस्मरण-शैली में कथा का प्रवाह स्पष्ट दिखाई देता है। घटनाएँ ऐसे प्रस्तुत होती हैं कि पाठक केवल पढ़ता नहीं, बल्कि दृश्य को देखता और संवाद को सुनता है। पिता से जुड़े संस्मरणों में भाषा आत्मीय है, पर भावुक नहीं; आलोचनात्मक है, पर कठोर नहीं।

ममता कालिया स्मृतियों का अंबार नहीं लगातीं। वे चुनती हैं और यही चयन उनके संस्मरणों को साहित्य बनाता है। वे वही घटनाएँ उठाती हैं जो उनके जीवन-दर्शन, सामाजिक चेतना और लेखकीय दृष्टि को उजागर करती हैं। यह चयनात्मकता उनके संस्मरणों को आत्मकथा से अलग करती है।

उनका यह कथन "मेरे सामने रूलदार कागज़ आ जाए तो मैं लिखने का इरादा ही छोड़ देती हूँ।" भाषा और देह के संबंध को स्पष्ट करता है। लेखन उनके लिए केवल वैचारिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि शारीरिक अनुभव भी है। यही विशेषता उनके संस्मरणों को रचना-प्रक्रिया का जीवित दस्तावेज बनाती है।

निष्कर्ष

ममता कालिया का संस्मरण साहित्य यह सिद्ध करता है कि स्मृति और सृजन के बीच का संबंध न तो आकस्मिक है और न ही भावुक आत्म-विलाप तक सीमित। उनके यहाँ स्मृति रचना-प्रक्रिया का मूल स्रोत है- एक ऐसी जीवित चेतना, जो बचपन, परिवार, शहर, स्त्री-अनुभव और भाषा-संस्कारों से गुजरते हुए साहित्य का रूप ग्रहण करती है।

नामवर सिंह का कथन कि संस्मरण में लेखक अपने जीवन को नहीं, अपने समय को याद करता है ममता कालिया के लेखन पर पूरी तरह लागू होता है। उनके संस्मरण निजी होते हुए भी सामाजिक और सांस्कृतिक विवेक से सम्पन्न हैं। अनुभव की प्रामाणिकता, आत्मालोचना और भाषा-संयम उनके लेखन को विशिष्ट बनाते हैं।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि ममता कालिया के संस्मरण केवल जीवन-वृत्त नहीं, बल्कि उस भट्टी का इतिहास हैं जिसमें तपकर साहित्य कुंदन बनता है। हिन्दी साहित्य में रचना-प्रक्रिया को समझने के लिए उनका संस्मरण लेखन एक अनिवार्य और विश्वसनीय पाठ है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. ममता कालिया, पढ़ते, लिखते, रचते, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2011
2. ममता कालिया, कितने शहरों में कितनी बार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000
3. ममता कालिया, जीते जी इलाहाबाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
4. नामवर सिंह, आलोचना की संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
5. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
6. अशोक वाजपेयी, समय से संवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
7. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

संदर्भः

[1] नामवर सिंह, आलोचना की संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998, पृ. 112

[2] ममता कालिया, पढ़ते, लिखते, रचते, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 22

[3] ममता कालिया, पढ़ते, लिखते, रचते, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2011, पृ 18

[4] ममता कालिया, पढ़ते, लिखते, रचते, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2011, पृ 24-25

[5] निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 41

[6] ममता कालिया, पढ़ते, लिखते, रचते, बोधि प्रकाशन, 2011, पृ. 31

[7] ममता कालिया, पढ़ते, लिखते, रचते, बोधि प्रकाशन, 2011,वही, पृ. 49

[8] ममता कालिया, पढ़ते, लिखते, रचते, बोधि प्रकाशन, 2011, पृ. 31

[9] अशोक वाजपेयी, समय से संवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 87

[10] ममता कालिया, जीते जी इलाहाबाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. 15

[11] ममता कालिया, जीते जी इलाहाबाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. 15

[12] मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005, पृ. 9